गोवर्धन ज्योति-चतुर्थ रश्मि

ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास का
सरलीकरण

(दयानन्द का राजनैतिक दर्शन)

प्रस्तुत कर्त्ता :-

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

श्री संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर द्वारा
प्रदत्त सहायता से प्रकाशित
प्रकाशक- आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार

गोवर्धन ज्योति प्रकाशन माला के आदि स्रोत

स्व० श्री गोवर्धन शास्त्री (१८८१-१९२७)

मान्यवर स्व० श्री गोवर्धन जी शास्त्री का जन्म सन् १८८१ में शरीक जिला डेरा गाजीखान (पाकिस्तान में एक परिवार में हुआ था। श्री शास्त्री जी राजकीय कालेज लाहौर से १९०५ में स्नातक बने। उस समय के राष्ट्रीय आंदोलन से प्रेरित होकर उन्होंने १९०५ में ही अपने आपको स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा सिञ्चित गुरुकुल प्रणाली हेतु समर्पित कर दिया। सन १९०८ से १९१४ तक उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी (गंगा पार) में मुख्याध्यापक का पद सुशोभित किया। श्री शास्त्री का कार्यकाल अत्यन्त अनुशासन प्रिय माना जाता है। श्री शास्त्री जी ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम विज्ञान की भौतिक एवं रसायन की दो पुस्तकों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया। हिन्दी भाषा में विज्ञान साहित्य सृजन का यह सर्वप्रथम महान् कार्य था। इसी आधार पर कालान्तर में विज्ञान का हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किये जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ।
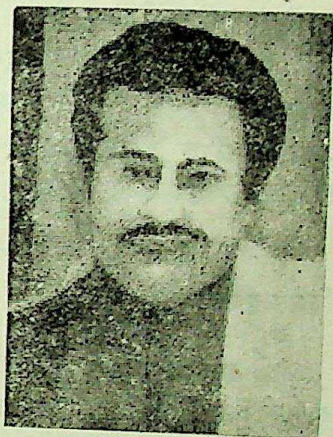
श्री शास्त्री जी ने सन् १९१८ में एम. ए. उपाधि प्राप्त

की तथा १९२२ में एम. श्रो. एल. शास्त्री उपाधि से अलंकृत हुए।

श्री शास्त्री जी १९१५ में रामजस हाईस्कूल देहली में मुख्याध्यापक नियुक्त हुए। १९२० में श्री शास्त्री जी ने एग्लों संस्कृत हाईस्कूल डेरा गाजीखान की स्थापना की। यहीं पर वे १९२४ तक मुख्याध्यापक रहे। इसके पश्चात् शास्त्री जी १९२५-१९२७ तक आर्यनेता श्री ठाकुरदत्त धवन द्वारा स्थापित वैदिक भ्रातृ कालेज डेरा इस्माइल खाँ में संस्कृत प्राध्यापक पद पर रहे।

सन १९२७ में ही श्री शास्त्री का डेरा इस्माइल खां में निधन हुआ।

श्री शास्त्री जी एक अदम्य शक्ति के पुरुष थे। एक आदर्श पिता, आदर्श प्राध्यापक तथा महान् शिक्षा शास्त्री के रूप में सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे। श्री शास्त्री जी के सुयोग्य पुत्र श्री बलभद्र कुमार हूजा, जो कि सदैव अपने पिता जी के चरण चिन्हों पर अनुप्राणित हो, गुरुकुल कांगड़ी को एक दशक से अहर्निश तपस्यामय जीवन के साथ शास्त्री जी के गुरुकुल के सम्बन्ध में संजोये गए स्वप्न को सजीव करने में लगे हुए हैं।

उन्हीं के आशीर्वाद से रश्मि आपकी सेवा में समर्पित है।

डॉ० जयदेव वेदालंकार

मन्त्री आर्यसमाज एवं रीडर, अध्यक्ष दर्शन विभाग

-: निवेदन :-

आज सभी वर्ग शासन प्रणाली की कड़ी आलोचना करते हैं, सभी को प्रशासन से कोई न कोई शिकायत है। यहां तक कि प्रशासन के कार्य में नियुक्त राजपुरुष भी प्रशासन की आलोचना करते हैं। आखिर इसको सुधारेगा कौन?

प्रशासन एक तंत्र है। किसी भी तंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिये जागृत मन, संवेदनशील हृदय एवं कर्म कुशल हाथों की आवश्यकता होती है। इनके बिना कोई भी तंत्र अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता।

मैंने अपने जीवन का दीर्घ काल शासन तंत्र में ही व्यतीत किया है। मेरा यह अनुभव है कि जहां जहां प्रबुद्ध संवेदनशील एवं कर्मठ व्यक्ति कार्यरत हैं, वहां वहां शासन में यथेष्ठ सुधार हुआ है और प्रजा को समुचित सुविधायें प्रदान हुई हैं।

वैसे तो मानव समाज में शक्तियों के समानान्तरण का सिद्धांत उद्घाटित होता है देवी और आसुरी शक्तियों में सदा युद्ध होता रहता है। उनकी शक्तियों के अनुपात से अच्छा या बुरा फल निकलता है।

इस विषय को लेकर मैंने जो अध्ययन किया, उसी प्रसंग में मुझे ऋषि दयानंद रचित सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास को अनेक बार पढ़ने का अवसर मिला। इस सम्मुलास में स्वामी जी ने प्रशासन में कार्यरत सभी राजपुरुषों के लिए ऐसी विचारोतेजक सामग्री प्रस्तुत की है जो प्रशासन कार्य में सही दिशा प्रदान कर सकती है

उक्त सम्मुलास संस्कृत निष्ठ है। आज राजकार्य में राष्ट्रपति से लेकर पटवारी तक स्त्री पुरुष कार्यरत हैं उन्हें संस्कृत का सामान्य ज्ञान भी नहीं है, इसलिये मैंने उक्त सम्मुलास को संक्षिप्त करते समय संस्कृत

के उदाहरणों को त्याग दिया। अन्य सामग्री को भी सरलीकरण एवं संक्षिप्त करने का प्रयत्न किया है, जिससे कि समस्त राजपुरुषों के लिये स्वामी जी के विचारों को सुबोध एवं हृदयगम भाषा में प्रस्तुत किया जा सके।

संक्षेप में स्वामी जी के विचार इस प्रकार हैं:—

१. राजपुरुषों को स्वामी जी क्षत्रीय की संज्ञा देते हैं तथा कहते हैं क्षत्रीय को योग्य है कि वे राज्य की रक्षा न्याय से करें।

२. सभी प्रजा को विद्या, स्वतंत्र धर्म, शिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

३. किसी एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार नहीं देना चाहिये। राजा सभा के अधीन हो तथा सभा प्रजा के अधीन हो। स्वामी जी लिखते हैं कि यदि ऐसा नहीं करोगे तो अकेला राजा स्वाधीन एवं उन्मुक्त होकर प्रजा का नाशक हो सकता है।

४. आगे चलकर स्वामी जी लिखते हैं कि जब तक मनुष्य धार्मिक होते हैं तभी राज्य बढ़ता जाता है। जब भ्रष्टाचारी होते हैं तब घटता जाता है।

५. सभापति के गुण क्या होने चाहिये, इस सम्बन्ध में स्वामी जी का कहना है कि सभापति पक्षपात रहित, अन्याय का निरोधक न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक होना चाहिये। वे लिखते हैं जो दया है वहीं पुरुष राजा, वही प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रज्ञा-स्थ मनुष्यों में जागता है।

६. जो राजा दण्ड को अच्छे प्रकार चलाता है, वह धर्म अर्थ और

काम की सिद्धि को प्राप्त करता है, जो अधर्मी, पापी, नीच, क्षुद्र बुद्धि राजा होता है वह दण्ड से ही मारा जाता है।

७. आगे स्वामी जी लिखते हैं मुख्य न्यायाधीश, मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, प्रधान राजा ये चार विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिये।

८. न्यून से न्यून दश विद्वानों तथा बहुत न्यून हो तो तीन विद्वानों की सभी जैसी व्यवस्था करें, इस धर्म तथा व्यवस्था को कोई उल्लंघन न करें। जो अविद्या युक्त मूर्ख, वेदों के न जानने वाला मनुष्य, उस धर्म को कहे, उसे कभी नहीं सोचना चाहिए, क्योंकि जो मूर्खों के अनुसार कहने वाले धर्म के अनुसार चले, उनकी कभी उन्नति नहीं होती। इसलिये तीनों सभा धर्म, राज्य, न्याय सभी में, मूर्खों को कभी भर्ती न करें।

९. सब सभासद तथा सभापति इन्द्रियों को जीतने तथा वश में रख के सदा धर्म से वर्तें तथा अधर्म से हटे हटाये रहें।

१०. वार्षिक कर आप्त पुरुषों के द्वारा ग्रहण करें। सभापति, राजा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता समान बरते। राजा और राज्य सभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त ही प्रयत्न से रक्षा करें। रक्षित को बढ़ाये, बटे हुए धन को वेद विद्या, धर्म प्रचार, विद्यार्थियों, वेदमार्ग उपदेश तथा असमर्थ एवं अनाथों के पालन में लगाये।

११. दो-तीन-पांच एवं सौ ग्रामों के बीच एक राज स्थान रख जाय जिसमें यथायोग्य भृत्य अथवा कामदार राजपुरुष को रखकर सब राज्यों के कार्यों को पूरा करें। एक एक ग्राम में एक एक

प्रधान पुरुष को रखे। उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामो के ऊपर चौथा उन्हीं सहस्र ग्रामों पर पाँचवा पुरुष रखे और आज्ञा देवे कि वे एक एक ग्राम पति जो दोष उत्पन्न हो उन्हें दस ग्राम के पति को निर्दिष्ट करें तथा वे दस ग्राम अधिपति बीस ग्राम के स्वामी को, बीस ग्राम के अधिपति शतग्रामाधिपति को, राज्य के सहस्त्र अधिपति को प्रतिदिन जमाया करें, और वे सब राज सभा, महाराज सभा इत्यादि को जनाया करे।

१२. आगे चल कर वे लिखते हैं कि अध्यक्ष, आलस्य छोड़ कर सब न्यायाधीश आदि के कार्यों को देखते रहे। जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राज पुरुष का प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त हो, वैसे विचार करके राजा तथा राज्य सभा राज्य में कर स्थापना करें।

१३. नीति का जानने वाला पृथ्वीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन तथा शत्रु अधिक न हो ऐसे शब्दों को बरते।

१४. क्योंकि प्रजा के धनाड्य, आरोग्य, खान पान आदि के सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने संतान के सदृश सुख देवें और प्रजा अपने पिता सदृश राजा तथा राज पुरुषों को जाने।

१५. चाहे पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्रीं, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्मं स्थित नहीं होता वो राजा का अदण्ड नहीं होता। जब राजा न्यायालय में बैठकर न्याय करें तो कभी पक्ष-पात न करें बल्कि यथोचित दंड दें।

१६. जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड हो अर्थात साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये ।

१७. स्वामी जी दोषी को कड़े दण्ड देने के पक्ष में थे । उनका कहना था कि न्याय युक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है । जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष और कौन होगा ? जो उसको कड़ा दण्ड जानथे है, वे राजनीति को नहीं समझते । क्योंकि एक पुरुष के इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरा कार्य करने से अलग रहेंगे । तथा बुरा मार्ग को छोड़कर धर्म मार्ग में संस्थित रहेंगे ।

१८. स्वामी जी राज पुरुषों के लिये ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना आवश्यक समजते थे उनका कहना था कि जब क्षत्रीय विषयासक्त होंगे तो राजधर्म नष्ट हो जायेगा । यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किंतु सब दिन धर्म, न्याय से बर्तें, बर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें ।

स्वामी जी ने राजकर्म का वर्णन वेद, मनुष्यमृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय, शुक्र नीति तथा विदुर प्रजागर और महाभारत के शांतिपर्व के आधार पर किया है, तथा अन्त में कहा है कि हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा, हम उसके किंकर भृत्यवन् हैं, वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करें और हमारे हाथ से अनेक सत्य, न्याय की प्रवृति कराये ।

इस हेतु कि स्वामी जी के विचार देश में प्रवृत लाखों राज पुरुषों

के सम्मुख प्रस्तुत हो, इस लघु पुस्तिका का निर्माण किया गया है। इसके प्रकाशन का भार आर्य समाज गुरुकुल कांगड़ी ने ग्रहण किया है। उनकी सहायता के लिये संघड़ विद्या ट्रस्ट जयपुर ने १००० रुपये का अनुदान देना स्वीकृत किया है। इस उपक्रम के लिये दोनों धन्यवाद के पात्र हैं। श्रेष्ठ कार्य का फल निसंदेह श्रेष्ठ होता है।

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

पुण्य भूमि- ग्राम कांगड़ी
श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
२३-१२-८३

-: भू मि का :-

सत्यार्थ प्रकाश का षष्ठम समुल्लास आज की गन्दी राजनीति के सम्मुख ऐसी राजनैतिक विचार धारा को जन्म देने में सक्षम है जो आध्यात्मिकता के धरातल पर मानव को संगठित करती है। जिस राजनैतिक चिंतन में जीवन की सार्थकता जिम्मेदार नागरिक के रूप में होने के साथ उसके दायित्व का बोध राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन धारा में भी समाहित है।

प्रस्तुत षष्ठम समुल्लास को अत्यन्त सारगर्भित रूप से ऋषि दयानन्द के राजनैतिक चिंतन को आज के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करते हुए यह सिद्ध किया है कि वैदिक राजनैतिक विचार धारा आज के भ्रष्ट प्रशासन तंत्र में एक ऐसी ज्योति के रूप में उद्भूत हो सकती है जिसमें मानवीय मूल्यों पर राज्य का शासन कायम होता है।

राष्ट्रीय परिवेश में एक जागरूक नागरिक का कर्तव्य बोध सड़ी गली राजनीति के आलम को बेधकर जीवन के शाश्वत मूल्यों के साथ जुड़ा होना चाहिये। एक सच्चे नागरिक के कर्तव्य बोध का सफल चित्रांकन स्वामी दयानन्द ने राजधर्म विषयक इस समुल्लास में प्रतिपादित किया। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत राजनैतिक चिंतन आज की कलुषित राजनीति के सामने एक ऐसा निर्झर राजधर्म प्रस्तुत करता है जिसमें राज्य की नीतियां भी धर्म से नियंत्रित होती है, जिस धारा में चक्रवर्ती सम्राट भी एक धार्मिक सन्यासी के सामने नतमस्तक होता है। राजनीति के मूल्य धार्मिक मूल्यों से उद्भूत हो, प्रशासन का संचालन लोकहित की मंगल भावनाओं से अभिप्रेत हो। ऐसा अनुपम आदर्श स्वामी दयानन्द ने ही सर्वप्रथम सत्यार्थ प्रकाश के उक्त समुल्लास में प्रकट किया।

सत्यार्थ प्रकाश के इस समुल्लास के संदेश को जनजन तक सुबोध रूप में पहुचाने हेतु यह प्रयास आज के राजनैतिक क्षितिज में उज्जवल प्रकाश विखेरता रहेगा।

ऋषि दयानन्द के राजनैतिक दर्शन को आज के राजनैतिक जीवन में सरल रूप में प्रस्तुत करने हेतु श्री बलभद्र कुमार हूजा, कुलपति कांगड़ी विश्वविद्यालय का यह प्रयास निश्चय ही अत्यधिक सार्थक रहेगा जिसमें सामान्य शिक्षित मनुष्य भी ऋषि दयानन्द के राजनैतिक चिंतन का लाभ उठा सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तिका संघड विद्या ट्रस्ट, जयपुर के द्वारा प्रदत्त १००० रुपये की राशि के सहयोग से गोवर्धन ज्योति की चतुर्थ रश्मि के रूप में प्रकाशित की जा रही है। श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने पूज्य पिता जी आचार्य गोवर्धन शास्त्री की स्मृति में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार हेतु गोवंधन ज्योति प्रकाशन माला का प्रारम्भ किया है जिसके अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तिका इस मणिमाला के चतुर्थ उपहार रूप में प्रस्तुत है। इस रश्मि में स्वामी दयानन्द द्वारा प्रस्तुत षष्ठम समुल्लास राज-धर्म के विचारों को सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार गोवंधन ज्योति की पंचम रश्मि भी १००० वेद मंत्रों की पुष्पमाला के रूप में शीघ्र प्रस्तुत की जा रही है जिसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के द्वारा वर्ष पर्यन्त कंठस्थ किये १०० वेद मंत्रों का चयन किया गया है।

आशा है इस प्रकार की पुस्तिकाओं से सामान्य जन स्वामी दयानन्द के सदेश को सरलतम रूप होने के कारण अधिक आसानी से ग्रहण कर सकेगा।

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
प्रधान- आर्य समाज,
गु० कां० विश्वविद्यालय, हरिद्वार

॥ ओ३म् ॥

षष्ठ समुल्लास

जैसा परम विद्वान ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे।

ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिल के सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा, राजार्यसभा नियत करके वहुत प्रकार के समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या स्वातंत्र्य् धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। उस राज-धर्म को तीनों सभा संग्रामादि की व्यवस्था और सेना मिलकर पालन करें। सभासद् और राजा को योग्य कि राजा सभासदों को आज्ञा देवे कि हे सभा के योग्य मुख्य सभासद् ! तू मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का पालन कर और जो सभा के योग्य सभासद् हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें।

इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा राजसभा के अधीन रहे। यदि ऐसा न करोगे तो जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें, जिस लिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत होके प्रजा का नाशक होता है अर्थात् वह राजा प्रजा को खाये जाता है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्टपुष्ट पशु को मारकर

खा लेते हैं वैसे स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिये हे मनुष्यो ! जो इस मनुष्य के समुदाय में परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को जीत सके जो शत्रुओं से पराजित न हो राजाओं में सर्वोपरि विराजमान प्रकाशमान हो सभापति होने को अत्यन्त योग्य प्रशंसनीय गुणककर्म स्वभावयुक्त सत्यकरणीय समीप जाने और शरण लेने योग्य सबको माननीय होवे उसी को सभापति राजा करे।

हे विद्वानों राजप्रजाजनों ! तुम इस प्रकार के पुरुष को बड़े चक्रवर्तीराज्य सब से बड़े होने बड़े बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने और परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालने के लिये सम्मति करके सर्वत्र पक्षपात रहित पूर्ण विद्या विनययुक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल शत्रु रहित करो और ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारे आग्नेयादि अस्त्र और शतध्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) धनुष, बाण तलवार आदि शस्त्र शत्रुओं के पराजय करने और रोकने के लिये प्रशंसित और दृढ़ हों- और तुम्हारी सेना प्रशंसनीय होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ परन्तु जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उसके लिये पूर्व वस्तु मत हों, अर्थात जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

महाविद्वानों को विद्यासभा उधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्म सभाअधिकारी तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राज सभा का प्रतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब

लोग वर्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें, सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों अर्थात् जो जो निजके काम हैं उनमें स्वतन्त्र रहें।

पुनः उस सभापति के गुण कैसे होने चाहिये।

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सब के प्राथवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्तनेवाला, सूर्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला, सभापति होवे। जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा जिसको पृथ्वी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो। और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्म-प्रकाशक, धनवर्द्धयक दुष्टों का बन्धनकर्त्ता बड़े ऐश्वर्यवाला होवे वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे।

सच्चा राजा कौन है :-

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब शासनकर्त्ता और सब शासनकर्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है। वही प्रजा का शासन कर्त्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है, इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण

किया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे। जहां कृष्ण वर्ण रक्तनेत्र भयंकर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड बिचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है। परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी विचार के करनेहारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान लोग कहते हैं। जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है। जब दण्ड बड़ा तेजोमय हैं उसको अविद्वान अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दण्ड धर्म से रहित कुटुम्ब सहित राजा ही का नाश कर देता है। क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्यपुरुषों का संगी यथावत् नीति शास्त्र के अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है। इसलिये :—

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्यधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सबके ऊपर वर्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्यधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान

और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिये। न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे। इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों, तब वह सभा हो कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये और जिस सभा में ऋग्वेद सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् हो के? व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे। यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों कोड़ मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषण आदि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्म-मात्र से शूद्रवत् वर्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये, क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। इसीलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करें, किन्तु सदा विद्वानों और धार्मिक पुरुषों की स्थापना करें। और सब लोग ऐसे राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या, सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें। सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने

वश में रख के सदा धर्म में वर्ते और अधर्म से हटे हटाए रहें। इसलिए रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें, क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापना करने को समर्थ कभी नही हो सकता। दृढ़ोत्साही होकर जो काम से देश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिसमें फंसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे। क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों फसता है, वह अर्थ अर्थात् राज्य धन आदि और धर्म से रहित हो जाता है। और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फंसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है। काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं, देखो मृगया खेलना, अक्ष अर्थात चौपड़ खेलना जुआ खेलना आदि दिन में सोना, कामकथा वा दूसरे की निन्दा किया करना, स्त्रियों का अति संग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य अफीम, भांग गांजा चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना व नाच कराना, सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं। क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं– चुगली करना, बिना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम कराना, दोषों में, गुण गुणों में दोष आरोपण करना, अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना, कठोर वचन बोलना, और बिना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना, ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं। जो सब विद्वान लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते है उस लोभ को प्रयत्न से छोड़ें। काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मादकार द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना: तीसरा स्त्रियों का विशेष संग, चौथा मृगया

खेलना, ये चार महादुष्ट व्यसन हैं। और क्रोधजों में बिना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीनों क्रोध से उत्पन्न हुये बड़े दुःखदायक दोष हैं। जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इनमें से पूर्व अर्थात व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से अन्याय, से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यंत संग, इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है। इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फंसने से मर जाना अच्छा है, क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तों अधिक अधिक पाप करके नीच नीच गति अर्थात् अधिक अधिक दुःख को प्राप्त होता जायेगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायेगा और जो व्यसन में नही फंसा वह मर भी जायेगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायेगा। इसीलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपान आदि दुष्ट कामों में न फसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावों में सदा वर्त के अच्छे अच्छे काम किया करें।

राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहिये

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात वा आठ उत्तम धार्मिक चतुर मन्त्री करे। क्योंकि विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में

कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये एक को राजा एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है। इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से मित्रता किसी से विरोध स्थित समय को देखके चुपचाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा जों जो देश प्राप्त हो उस उस में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करें। विचार से करना कि उन सभासदों का पृथक पृथक अपना अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हित कारक हो वह करने लगना। अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चित-बुद्धि, पदार्णों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरिक्षित मन्त्री करे। जितने मनुष्यों से राज्यकार्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे। इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े बड़े कर्मों में और भीरु डरने वालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करें। जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रों में बिशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खें। वह ऐसा हो कि राजकाम में अत्यन्त उत्साहप्रीतियुक्त निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्तमान का कर्ता, सुन्दररूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा या दूत होने में प्रशस्त है।

किस किस को क्या क्या अधिकार देना योग्य है:-

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्याय रूप दण्ड न होने पावे राजा के अधीन दोश और राजकार्य तथा सभा के आधीन सब कार्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना अधिकार देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े। वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो। इसलिये सुन्दर जंगल धनधान्य युक्त देश से धनुर्धारी पुरुषों से गहन मट्टी से किया हुआ जल से घेरा हुआ अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इसके मध्य मध्य में नगर बनावे। और नगर के चारों ओर प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है। वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों, शिल्पी, कारीगर, यन्त्र, नाना प्रकार की कला, चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो। उसके मध्य में जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित, सब ऋतुओं में सुखकारकर, श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे। इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहां तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्यरूप गुणयुक्त अपने हृदय को अति-प्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्तम सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रीय कुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस

एक ही स्त्री के साथ विवाह करे, दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे। पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इस लिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजधर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे, अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य में प्रवृत रहना ओर कोई राजकाम बिगड़ने न देना।

वार्षिक कर आप्त पुरुषों के द्वारा ग्रहण करे, और जो सभापति राजा आदि प्रधान पुरुष हैं, वे सब सभा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के समान वर्ते। उस राज्य कार्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को सभा नियत करे, इनका यही काम है जितने जितने जिस जिस काम में राजपुरुष हों वे नियमानुसार वर्त कर यथावत् काम करते हैं वा नहीं, जो यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड किया करे। सदा जो राजाओं का वेदप्रचाररूप अक्षय कोष है इसके प्रचार के लिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्य से वेद दि शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से आवें उनका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका भी जिनके पढ़ाये हुए विद्वान होवें। इस बात के करने से राज्य में विद्या की उन्नति होकर अत्यन्त उन्नति होती है।

जब कभी प्रजा का पालन करने वाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम संग्राम में आवाह्न करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने से कभी निवृत न हो, अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करें जिससे अपना ही विजय हो। जो संग्रामों में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा करते हुए राजा लोग जितना अपना

सामर्थ्य हो विना डर पीठ न दिखा युद्ध करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं इससे विमुख कभी न हों किन्तु कभी कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है, क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसा काम करें, जैसा सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावें। युद्ध समय में न इधर उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न 'मैं तेरे शरण हूँ' ऐसे को। न सोते हुए न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुद्ध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखने वालों, न शत्रु के साथी। न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायम करते हुए पुरुष को, सत्पुरुषों को, सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए, योद्धा लोग कभी मारें। किन्तु उनको पकड़ के जो अच्छे हों बन्दीगृह में रख दे और भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिड़ावे न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, वालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकायुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के वालों को अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियों को भी पाले। उनको अपनी बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयसक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाये और जिन में पुनः पुनः युद्ध करने की शंका न हो, उनको सत्कारपूर्वक छोड़ कर अपने अपने घर वा देश को भेज देवे और जिस से भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो उनको सदा कारागार में रक्खे। और जो पलायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय

वह उस स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे। और जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक, और परलोक में सुख होने वाला था उसको उसका स्वामी ले लेता है। जो भागा हुआ मारा जाय उसको कुछ भी सुख नहीं होता उसका पुण्यफल नष्ट हो जाता और उस प्रतिष्ठा को वह प्राप्त हो जिसने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो। इस व्यवस्था को कभी न तोड़ें कि जो जो लड़ाई में जिस जिस भृष्य वा अध्यक्ष ने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, ग्राम आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हों, वही उसका ग्रहण करे। परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवे और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन मे से, जो सबने मिलकर जीता हो, सोलहवां भाग देवे और जो कोई युद्ध में मर गया हो उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे, उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्य की वृद्धि प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धि की इच्छा रखता हो वह इस मर्यादा का उल्लंघन कभी न करे।

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे। इस चार प्रकार के पुरुषार्थ के प्रयोजन को जाने। आलस्य छोड़कर इसका भलीभांति नित्य अनुष्ठान करे। दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा, रक्षित की वृद्धि अर्थात्

ब्याजादि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे। कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सब से वर्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके शत्रु के किये हुए छल को जान के निवृत करे। कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे, जैसे कछुआ अपने अंगों को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे। जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मछली के पकड़ने को ताकता है वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बल की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे। चीता के समान जीतकर शत्रुओं को पकड़ने और समीप में आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छल से पकड़े। इस प्रकार विजय करने वाले सभापति के राज्य में जो परि-पन्थी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उनको (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़ तोड़ करके वश में करे और जो इनसे वश में न हो तो अति कठिन दण्ड से वश में करे। जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे। जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है वह राज्य और अपने बन्धु सहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृषित करने से क्षीण हो जाते हैं वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजसभा राजकार्य की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य यथावत् सिद्ध हों, जो राजा राज्य-पालन में सब प्रकार तत्पर रहता है, उसको सुख सदा बढ़ता है।

इसलिये दो, तीन, पांच और सौ ग्रामों के बीच में एक राजस्थान रक्खे जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्य के कार्यों को पूर्ण करे। एक एक ग्राम में एक एक प्रधान पुरुष को रक्खे, उन्हीं दस ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पाँचवां पुरुष रक्खे, अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एकथाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है यह वही मनु आदि धर्म शास्त्र से राजनीति का प्रकार लिया है। इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक एक ग्रामों का प्रति ग्रामों में नित्यप्रति जो जो दोष उत्पन्न हों उन उन को गुप्तता से दश ग्राम के पति को विदित कर दे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्तमान नित्यप्रति जना देवे। और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्तमान को शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन सौ सौ ग्रामों के वर्तमान को प्रतिदिन जनाया करें। और बीस बीस ग्राम के पांच अधिपति सौ सौ ग्राम के अध्यक्ष को और वे सहस्र सहस्र के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और लक्ष ग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्तमान जनाया करे। और वे सब राजसभा महाराज सभा अर्थात् सार्वभौम-चक्रवर्ती-महाराजसभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें। और एक एक दश दश सहस्र ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिनमें एक राज सभा में दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहें। बड़े बड़े नगरों में एक

एक विचार करने वाली सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक एक घर बनावें, उसमें बड़े बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें, जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें। जो नित्य घूमने वाला सभापति हो उसके अधीन सब गुप्तचर अर्थात दूतों को रक्खे जो राजपुरुष और भिन्न भिन्न जाति के रहें। उनसे सब राज और प्रजापुरुष के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे। जिनका अपराध हो उनको दण्ड और जिनका गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे। राजा जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान कुलीन हों उनके अधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरने वाले चोर डाकुओं को भी नौकर रखके उनको दुष्ट कर्म से बचाने के लिये राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करनेवाले विद्वानों के स्वाधीन करके उनसे इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे। जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उसका सर्वस्व हरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रक्खे कि जहां से पुनः लौटकर न आ सके, क्योंकि यदि उनको दण्ड न दिया जाय तो उसको देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहें। परन्तु जितने से उन राज पुरुषों का योगक्षेम भलीभांति हो और वे भलीभांति धनाढ्य भी हों उतना धन वा भूमि राज्य की ओर से मासिक वा वार्षिक अथवा एक बार मिला करे और जो वृद्ध हों उनको भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यान में रक्खे कि जब तक वे जियें तब तक वह जीविका बनी रहे पश्चात् नहीं, परन्तु इनके सन्तानों का

सत्कार वा नौकरी उनके गुण के अनुसार अवश्य देवे। और जिनके बालक जब तक समर्थ हों और उनकी स्त्री जीती हो तो उन सबके निर्वाहार्थ राज की ओर से यथायोग्य धन मिला करे परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मी हो जायें तो कुछ न मिले ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे।

जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवे वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में कर स्थापना करे। जैसे जोंके बछड़ा और भंवरा थोड़े थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा थोड़ा वार्षिक कर लेवे। अतिलोभ से अपने वा दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे, क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है वह अपने को और उनको पीड़ा ही देता है जो महीपति कार्य को देख के तीक्ष्ण और कोमल भी होवे वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहने से राजा अति माननीय होता है। इस प्रकार सब राज्य का प्रबन्ध करके सदा इसमें युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजा का पालन निरन्तर करे। जिस भृत्य सहित देखते हुए राजा के राज्य में से डाकू लोग रोती बिलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं वह जानो भृत्य अमात्य सहित मृतक है जीता नहीं और महादुःख का पानेवाला है। इसलिये राजाओं का प्रजापालन करना ही परमधर्म है और जो मनुस्मृति के सप्तमाध्याय में कर लेना लिखा है और जैसा सभा नियत करे उसका भोक्ता राजा धर्म से युक्त होकर सुख पाता है इससे विपरीत दुःख को प्राप्त होता है।

जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान होकर

परमेश्वर का ध्यान, अग्निहोत्र धार्मिक विद्वानों का सत्कार और भोजन करके भीतर सभा में प्रवेश करे। वहां खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों उनको मान्यता दे और उनको छोड़कर मुख्य मन्त्री के साथ राज्यव्यवस्था का विचार करें। तत्पश्चात् उसके साथ घूमने को चला जाय, पर्वत की शिखर अथवा एकान्त घर वा जंगल जिसमें एक शलाका भी न हो वैसे एकान्त स्थान में बैठकर विरुद्ध भावना को छोड़ मन्त्री के साथ विचार करे। जिस राजा के गूढ़ विचार को अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारार्थ सदा गुप्त रहे वह धनहीन भी राजा सब पृथ्वी के राज्य करने में समर्थ होता है। इस लिये अपने मन से एक भी काम न करें कि जब तक सभासदों की अनुमति न हो।

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है, जो स्थिरता शत्रु से लड़ने के लिये जाना उनसे मेल कर लेना दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना दो प्रकार की सेना करके स्वविजय कर लेना और निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना, ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य को विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये। राजा जो संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो दो प्रकार के होते हैं उनको यथावत् जाने। शत्रु से मेल अथवा उससे विपरीतता करे परन्तु वर्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता जाय, यह दो प्रकार के मेल कहाता है। कार्यसिद्ध के लिये उचित समय वा अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के अपराध करने वाले शत्रु के साथ विरोध दो प्रकार से करना चाहिये। अकस्मात् कोई कार्य प्राप्त होने में एकाकी वा मिल के साथ मित्र के शत्रु की ओर जाना यह दो

प्रकार का गमन कहाता है । स्वयं किसी प्रकार क्रम से क्षीर्ण हो जा
अर्थात् निर्बल हो जाय अथवा मित्र के रोकने से अपने स्थान में बैठ
रहना, यह दो प्रकार का आसन कहलाता है । कार्यसिद्ध के लिये सेन
पति और सेना के दो विभाग करके विजय करना
प्रकार के द्वैद्य कहाता है । एक किसी अर्थ की सिद्धि के लिये किस
बलवान् राजा वा किसी महात्मा की शरण लेना जिससे शत्रु से पीड़ि
न हो दो प्रकार का आश्रय लेना कहाता है । जब यह जान ले कि इ
समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात् करने से अपन
वृद्धि और विजय अवश्य होगी तब शत्रु से मेल कर
उचित समय तक धीरज करें । जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन
प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझे तभी श
से विग्रह कर लेवे । जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टियु
प्रसन्न भाव से जाने और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल ह
जावे तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिए जावे । जब सेना बलवाह
से क्षीण हो जाय तब शत्रुओं को धीरे धीरे प्रयत्न से शान्त करता हुअ
अपने स्थान में बैठा रहे । जब राजा शत्रु को अत्यन्त बलवान जा
तब द्विगुण वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य सिद्ध करे । ज
आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी तभ
किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय शीघ्र ले लेवें । जो प्रजा औ
अपनी सेना शत्रु के बल का निग्रह करें अर्थात् रोके उसकी सेवा स
यत्नों से गुरु के सदृश नित्य किया करे । जिसका आश्रय लेवे उस पुर
के कर्मों में दोष देखे तो वहाँ भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशु
होकर करे । जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध कभी न करे कि

उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो उसी के जीतने के लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है।

नीति का जानने वाला पृथ्वीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन और शत्रु अधिक न हो ऐसे सब उपायों से वर्ते। सब कार्यों का वर्तमान में कर्तव्य और भविष्यत् में जो जो करना चाहिये और जो जो काम कर चुके उन सब के यथार्थता से गुण दोषों को विचार करे। पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे। जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करने वाले कर्मों में गुण दोषों का ज्ञाता, वर्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता। सब प्रकार से राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनों के मित्र उदासीन और शत्रु को वश में करके अन्यथा न करावे ऐसे मोह में कभी न फंसे, यही संक्षेप से तय अर्थात् राजनीति कहाती है।

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शास्त्रास्त्र आदि पूर्ण लेकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देने वाले पुरुषों को गुप्त स्थापन करके शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे। तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल में दूसरा जल में तीसरा आकाश मार्गों को शुद्ध बनाकर भूमि मार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े शस्त्र और अस्त्र खानपान आदि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित को

प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे धीरे जावे। जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता, से शत्रु को भेद देवे, उसके आने जाने में उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रक्खे, क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये। सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे। जो पूर्वशिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ना लड़ाना जानते है। जब शिक्षा करे तब दण्ड के समान सेना को चलावे जैसा शकट अर्थात् गाड़ी के समान जैसे सुगर एक दूसरे के पीछे दौड़ते हैं और कभी कभी सब मिलकर झुण्ड हो जाते हैं वैसे जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे, जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्य पश्चात स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे, जैसे नीलकंठ ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे। जिधर भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतियों को चारों ओर रख के अर्थात् पधारकर चारों ओर से सेनाओं को रखकर मध्य में आप रहें। सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा का देने और सेना के साथ लड़ने लड़ाने वाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेना का मुख रक्खे। परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे। नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव होता हैं। जो जुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य युद्धविद्या से सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करने में चतुर भयरहित और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उनको चारों ओर सेना के रक्खें। जो थोड़े से पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावें और काम

पड़े तो उन्हीं को झट फैला देवे। जब नगर दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर काट करता वैसे युद्ध करते जाय और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावे, जो सामने शतघ्नी (तोप) वा भुशुंडी (बन्दूक) छूट रही हो तो सर्प के समान सोते सोते चले जायें, जब तोपों के पास पहुंचे तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रु की ओर फेर कर उन्हीं तोपों से वा बन्दूक आदि से उन शत्रुओं को मारे अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा दौड़ावें और मारें, बीच में अच्छे अच्छे सवार रहें, एक बार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें। जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ, घोड़े और पदातियों से, और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जल में हाथियों पर, वृक्ष और झाड़ी में बाण तथा स्थल वालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें करावें। जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़ने वालों को उत्साहित और हर्षित करें, जब युद्ध बन्द हो जाय तब जिससे शौर्य और युद्ध में उत्साह हो वैसे वक्तव्यों से सब के चित को खान पान अस्त्र शस्त्र सहाय और औषध आदि से प्रसन्न रक्खें व्यूह के बिना लड़ाई न करे न करावे, लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक ठीक लड़ती है वा कपट रखती है। किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रक्खे और इससे राज्य को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और इन्धन को नष्ट दूषित कर दे। शत्रु के तालाव नगर प्रकोट और खाई को तोड़ फोड़ दे, रात्रि में उनको (त्रास) भय देवे और जीतने का उपाय करे। जीत कर उनके साथ प्रमाण

अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उससे लिखा लेवें कि तुमको हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उसके अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा, ऐसे उपदेश करें और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिसमें पुनः उपद्रव न हो। और जो हार जाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम प्रदार्थों के दान से करे और ऐसा न करें कि जिससे उसका योग क्षेम भी न हो। जो उसको बन्दीगृह करे तो भी उसका सत्कार यथा-योग्य रक्खे जिससे वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे। क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित के मनोवांछित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है, और कभी उसको चिड़ावे नहीं, न हंसी और न ठठा करे, न उसके सामने हमने तुझको पराजित किया है ऐसा भी कहे, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करें।

मित्र का लक्षण यह है कि राजा सुवर्ण और भूमि की प्रतिष्ठा से वैसा नही बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्धि करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है। धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात किये हुए उपकार को सदा मानने वाले प्रसन्न स्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है। सदा इस बात को दृढ़ रक्खें कि कभी बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे, क्योंकि जो ऐसे

को शत्रु बनावेगा वह दुःख पावेगा। उदासीन का लक्षण जिसमें प्रशंसित गुणयुक्त अच्छे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी स्थूललक्ष्य अर्थात् ऊपर ऊपर की बातों को निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है।

पूर्वोक्त प्रातः काल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कबायद कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि का स्थान शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख सब पर दृष्टि नित्य न देकर जो कुछ उनमें खोट हों उनको निकाल व्यायामशाला में जा व्यायाम करके मध्याह्न समय भोजन के लिये 'अन्तः पुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करें और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबल पराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न व्यन्जन पान आदि सुगन्धित मिष्ठानदी अनेक रसायुक्त उत्तम करें कि जिससे प्रजा सुखी रहे, इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करें।

प्रजा से कर लेने का प्रकारः-

जो व्यापार करने वाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना लाभ हो उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे। और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने पीने और धन से रहित होकर दुःख न पावें।

क्योंकि प्रजा के धनाढ्य आरोग्य खान पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है, प्रजा को अपने सन्तान के सुदृढ़ सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने।

यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक हैं, जो प्रजा न हो तो राजा किसका ? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे ? दोनों अपने अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के बिरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले। यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिस को 'पोलिटिकल' कहते हैं संक्षेप से कह दिया, अब जो विशेष देखना चाहे वह चारों वेद मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारत आदि में देख कर निश्चय करे, और जो प्रजा का न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिये, परन्तु यहां भी संक्षेप से लिखते हैं :-

सभा राजा और राजपुरुष सब लोग देशाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में बिवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की आवश्यकता जाने तो उत्तमोतम नियम बांधे कि जिस से राजा और प्रजा की उन्नति हो। अठारह मार्ग यह है, उनमें से १- किसी से ऋण लेने का विवाद। २- धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३- दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेच लेवे। ४- मिल मिला के किसी पर अत्याचार करना। ५- दिये हुए पदार्थ का न देना। ६- वेतन अर्थात् किसी की नौकरी में से ले लेना या कम देना अथवा न देना। ७- प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्तना। ८- लेन देन में झगड़ा होना। ९- पशु के स्वामी और पालने वाले का झगड़ा। १०- सीमा का विवाद। ११- किसी को कठोर दण्ड देना। १२- कठोर वाणी का बोलना। १३- चोरी डाका मारना। १४-किसी

काम को बलात्कार से करना । १५- किसी की स्त्री वा पुरुष का व्यभिचार होना । १६- स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यक्तिक्रम होना । १७- विभाग अर्थात् दायभाग में वाद उठना । १८- द्यूत अर्थात पदार्थ समाह्य अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ खेलना। ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं । इन व्यवहारों में बहुत से विवाद करने वाले पुरुषों के न्याय को सनातन धर्म के आश्रय करके किया करे अथात् किसी का पक्षपात कभी न करे। जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है, जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलंक को निकालना और अधर्म को छेदन नहीं करते अर्थात् धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस सभा में जितने सभासद् हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं। धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे, और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले, जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है । जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं जानो उनमें कोई भी नहीं जीता। मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है, इसलिये धर्म का हनन कभी न करना इस डर से कि मरा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले। जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है उसका लोप करता है उसी को विद्यवान लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते है, इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं। इस संसार में एक धर्म ही सुहृद हैं जो

मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा सभी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं, अर्थात् सबका संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता। जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहाँ अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं उनमें से एक अधर्म के कर्त्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है। जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड, और मान्य के योग्य का मान्य होता है वहाँ राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं, पाप के कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है।

अब साक्षी कैसे करने चाहियें :—

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जानने वाले, लोभ रहित सत्यवादी को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे, इससे विपरीतों को कभी न करे। स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और अण्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों। जितने बलात्कार काम चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपात रूप अपराध हैं उनमें साक्षी की परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी समझे, क्योंकि ये काम सब गुप्त होते है। दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल और दोनों के साक्षी गुणों और तुल्य हों तो द्विजोत्तम अर्थात् ऋषि महर्षि और यतियों की साक्षी के अनुसार न्याय करे। दो प्रकार के

साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से, जब सभा में पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथा योग्य दण्डनीय हों। जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से विरूद्ध बोले तो वह (अ ाङ् नरक) अर्थात् जिवाह् के छेदन से दुःख रूप नरक को वर्तमान समय में प्राप्त होवे और मरे पश्चात सुख से हीन हो जाय। साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से व्यवहार सम्बन्धी बोले, और इससे भिन्न सिखाये हुये जो जो वचन बोले उस उस को न्यायाधीश व्यर्थ समझे। जब अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों को शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा बैरिस्टर इस प्रकार से पूछें। हे साक्षी लोगों। इस कार्य में इन दोनों के परस्पर कामों में जो तुम जानते हो उसको सत्य के साथ बोलो, क्योंकि तुम्हारी इस कार्य में साक्षी है। जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है, इस जन्म वा परजन्म में उत्तर कीर्ति को कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है। सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है इससे सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है। आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान के हे पुरुष। तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर, अर्थात् सत्य भाषण

जो कि तेरे आत्मा मन वाणी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्या भाषण है। जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शंका को प्राप्त नहीं होता उससे भिन्न विद्वान लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते। हे कल्याण की इच्छा करने हारे पुरुष। जो तू 'मैं अकेला हूं ऐसा अपने आत्मा में जानकार मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे। इनमें से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे। जो लोभ से झूठी साक्षी देवे तो उससे। (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड लेवे, जो मोह से झूठी साक्षी देवे उससे ३) तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उससे ६१) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १२११ (साढ़े बारह रुपये दण्ड लेवे) जो पुरुष कामना से मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोध से झूठी साक्षी देवे उससे ४६१११) छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, जो पुरुष अज्ञानता से झूठी साक्षी देवे उससे ६) (छः रुपये) दण्ड लेवे, और जो बालक पन से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १-५०) एक रुपये नो आने) दण्ड लेवे। दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिवाह, हाथ, पग, आंख, नाक,

कान धन और देह ये दश स्थान है कि जिन पर दण्ड दिया जाता है। परन्तु जो जो दण्ड लिखा है और लिखेगें जैसे लोभ से साक्षी देने में पण्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निर्धन हो तो उससे कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे, अर्थात् जैसा काल और पुरुष हो उसका जैसा अपराध हो वैसा ही दण्ड करे। क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्ण प्रतिष्ठा वर्तमान और भविष्यत् में (और परजन्म में) होने वाली कीर्ति का नाश करने हारा है और परजन्म में भी दुःख दायक होता है, इसलिये अधर्म युक्त दण्ड किसी पर न करे। जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिसको दण्ड देना न चाहिये उसको दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है इसलिए जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे। प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उसकी 'निन्द्रा' दूसरा 'धिक्' दन्ड अर्थात् तुझको धिक्कार है तूने बुरा काम क्यों किया, तीसरा उससे 'धन लेना' और चौथा 'वध' दण्ड अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत से मारना या सिर काट देना।

चोर जिस प्रकार जिस जिस अंग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस उस अंग को सब मनुष्य की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे। चाहे पिता, आचार्य मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्डय नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे

तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे। जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दन्ड होवे, अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये। मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा, उनसे न्यून को सात सौ गुणा और उससे भी न्यून को छः सौ गुणा। इसी प्रकार उत्तर अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें, जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये। और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य के सोलहे गुणा, क्षत्रीय को बीस गुणा, ब्राह्मण को चौसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिये अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिये। राज्य के अधिकारी धर्म और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला राजा बलात्कार काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे। साहसिक पुरुष का लक्षण जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, बिना अपराध से दण्ड देने वाले से भी साहस बलात्कार काम करने वाला है वह अतीव पापी दुष्ट है। जो राजा साहस में वर्तमान पुरुष को दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही

नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है। न मित्रता और न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी राजा सब प्राणियों को दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बन्धन छेदन किये विना कभी छोड़े। चाहे गुरू हो चाहे पुत्र आदि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्तमान दूसरे को विना अपराध मारने वाले हैं उनको बिना विचारे मार डालना, अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये। दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी से मारन जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है। जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन को बोलने हारा, न साहसिक डाकू, और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का न भंग करने वाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है।

जो स्त्री अपनी जाति गुणा के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उसको बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले। उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्या गमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उनको तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये। राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशील मनुष्य है जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेगें? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और

सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है ? जो ऐक्सो व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और समर्थ पुरुष अन्याय में डूबकर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जाएं, अर्थात् उस श्लोक के अर्थ को स्मरण करो कि न्याय युक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है। जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा।

जो इसको बड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दन्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेगें और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थित रहेगें। सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दब्ड सब के भाग में न आयेगा, और जो सुगम दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगे। जो लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां व नदी तथा बड़े नदी में जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे, और महासमुद्र में निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिससे राजा और बड़े-बड़े नौकाओं के समुद्र में चलाने वाले दोनों लाभयुक्त हो वैसी व्यवस्था करे। परन्तु यह ध्यान में रखना चासियें कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे वे झूठे हैं। और देश देशान्तर द्वीप दीपान्तरों में नौका से जाने वाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकार का दुःख न होने देवे। राजा प्रतिदिन कर्मो की समाप्ति को, हाथी घोड़े आदि बाहनों को, नितय लाभ और ख़र्च, 'आकर' रत्नादिकों की खानें और कोष

(खजाने) को देखा करे। राजा इस प्रकार सब व्यवहारों को यथावत् समाप्त कराता हुआ सब पापों को छुड़ा के परमगति मोक्ष सुख को प्राप्त होता है। जो नियम राजा प्रजा के सुख कारक और धर्मयुक्त समझें उन-उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहाँ तक बन सके वहाँ तक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी बिना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना, न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष सैकड़ों ज्ञानी और विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्मा को नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं हो सकती। बिना व्यवस्था के सब आपस में ही फूट टूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट हो जायें। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अति विषय शक्ति है वैसा कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढ़ांग और बलयुक्त होना चाहिये। क्योंकि जब वे ही विषयाशक्त होंगे तो राज्यधर्म ही नष्ट हो जायेगा। और इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि 'यथा राजा प्रजा' जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से व्रत कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

प्रकाशक- आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
प्रधान- आर्यसमाज गुरुकुल कांगड़ी

प्रथम बार- १००० प्रतियां

फरवरी १९८४ ईस्वी
फाल्गुन २०४० सम्वत्

मूल्य- श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

मुद्रणालय- श्वेता प्रिन्टर्स
आर्यनगर, ज्वालापुर